International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

सामाजिक उत्थान में संस्कृत का योगदान

दिनेश कुमार,
शोधर्थी (एम.फिल.),
संस्कृत विभाग, म.द.वि., रोहतक।
फोन : 9992077008
e-mail : dineshchopra41@gmail.com

ज्यों–ज्यों ऐहिक सुखोन्मुख होता जा रहा है, आध्यात्मिक प्रगति के स्थान पर भौतिक प्रगति की ओर अग्रसर होता जा रहा है, त्यों–त्यों उसमें स्वार्थपरायणता, धनलोलुपता, कर्तव्यविमुखता आदि की वृद्धि होती जा रही है। उच्च नैतिक आदर्शों से विहीन हो रहे मानव–समाज में कई विकृतियाँ आ गयी है, जो विकट समस्या का रूप धरण कर गयी हैं। आज आतंकवाद, पर्यावरण–प्रदूषण, राजनैतिक अस्थितरता, धर्मिक विद्वेष, सामाजिक विषमता, राष्ट्रदोह, क्षीण हो रहे पारिवारिक रिश्ते, जनसंख्यावृद्धि आदि कुछ समस्याएँ हमारे समक्ष हैं। संस्कृत–साहित्य भारतीय मनीषियों के युगीन चिन्तन और बोध का परिणाम है। इसमें वह ज्ञान निहित है, जो अजर–अमर होने के साथ–साथ युगबोध्क भी है। समसामयिक समस्याओं का उपचार क्या है, किसी समस्या विशेष में हमने कैसी जीवनशैली अपनायी है, इसका सामाधन क्या है, किस प्रकार की जीवनपद्धति श्रेयस्कर है, इत्यादि के लिए हमें संस्कृत की शरण में जाना होगा। कुछ एक वर्तमान समस्याओं के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य का दृष्टिकोण इस प्रकार है –

आतंकवाद – विश्वव्यापी होती जा रही आतंकवाद की समस्या प्रमुख समस्याओं में से एक है। भारत के किसी क्षेत्र में आतंकवाद पिछले कई वर्षों से अपना स्वरूप दिखाता आ रहा है। इसके कारण सामाजिक अशान्ति व सामूहिक हत्याकाण्डों से निरीहहनन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।, जिससे देश की प्रगति भी अवरुद्ध हो रही है। संस्कृत–साहित्य में 'आतंकवादी' के लिए 'आततायी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। आततायी कौन है? इसकी क्या परिभाषा है? इसका उत्तर हमें शुक्रनीति में मिलता है। शुक्रनीति ने अनुसार आग लगाने वाला, जहर देने वाला, शस्त्रोन्मत्त होकर जनसमुदाय को मारनेवाला तथा किसी

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

के धन, जमीन और स्त्री को छीनने वाला व्यक्ति आततायी है।[1] इन छः प्रकार के व्यक्तियों का समाधन क्या है? मनुस्मृति के अनुसार बाततायी को देखते ही बिना सोचे–विचारे उसका वध कर देना चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं है।[2] मनुस्मृति में प्रयुक्त 'अतिविचारयन्' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं? एक तो उसके मारने में विचिकित्सा नहीं होनी चाहिए कि इसे मारा जाये या नहीं। दूसरा अर्थ वह ध्सनित होता है कि उसक लिए किसी न्यायप्रक्रिया में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि भी इस प्रकार के व्यक्ति के जैसे–तैसे वध के समर्थ हैं। वाल्मीकि रामायण में बाली राम से अपने मारने का कारण पूछता है। बाली के अनुसार – भूमि, स्वर्णादि धातुएँ या रूप (स्त्री) युद्ध का कारण होते हैं। इनमें से कोई भी कारण न होने की स्थिति में बाली अपने वध (वह भी पराघ्मुख स्थिति में) का कारण पूछता है।[3] राम कहते हैं कि धर्महीन, निकृष्ट कर्मों में लगे हुए राजनियम और लोकृत्त से विपरीत चलने वाले व्यक्ति दण्डनीय होते हैं। इसीलिए मैंने आपको यह दण्ड दिया है।[4]

पर्यावरण प्रदूषण – पर्यावरण–प्रदूषण समस्या मानव–जीवन के लिए भयंकर समस्या के रूप में सामने आ रही है। इसका कारण जल और वायु का अपवित्र हो जाना है। आज हम पवित्र नदियों को मल–मूत्र सहित कई गन्दे व घातक पदार्थ फेंक कर अपवित्र कर रहे हैं। अग्नि में ऐसी वस्तुएँ जला रहे हैं, जिससे समूचा वायुण्डल दूषित हो रहा है। जलवायु के दूषित होने के कारण अविवेकपूर्ण ढंग से वृक्षों का अन्धधुन्ध कटाना भी है। 'मनुस्मृति' में जल व अग्नि को शुद्ध रखने के स्पष्ट निर्देश हैं। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि पानी में मूत्र, विष्टा, थूक, अपवित्र वस्तु, खून और विष न फेंकें।[5] अग्नि में अपवित्र वस्तु न फेंकें।

---

[1] अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः। क्षेत्रदारहरश्चैतान् षड् विद्यादाततायिनः। शुक्रनीति
[2] गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्रह्मणं वा बहुश्रुतम्, आततायिनमायान्तं हन्योवाविचारयन्।
[3] पराघ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः... वा.रा.कि. 17.16, भूमिर्हिरण्यं रूपं च विग्रहे कारणानि च... वा.रा.कि. 31
[4] त्वंतु संश्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः कामतन्त्रप्रधनश्च न स्थितो राजवर्त्मनि वा.रा.कि. 18.12 नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्ताउपेयुषः, दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप वा.रा.कि. 18.21 प्रचरेत नरःकामान् तस्य दण्डो वधःस्मृतः... वा.रा.कि. 18.23
[5] नाप्सु मूत्रं परीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्, अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा। मनुस्मृति 4.46

फसलों वाले खेत में भी मल–मूत्र त्याग न करें।[6] फल देने वाले वृक्षों और पुष्प लतादि के काटने पर प्रायश्चित्त का विधान इनके न काटने को ही ध्वनित करता है।[7] जिन वृक्षों पर पक्षियों ने अण्डे दिये हों या बच्चे हों, उन्हें भी न काटने की वैदिक प्रार्थना है।[8] जल, औषधियों, आकाश, वन तथा वृक्ष रूप केशों वाले पर्वतों से रक्षा की प्रार्थना इनके संरक्षण पर ही महत्त्व डालती है, जिससे हमारा पर्यावरण शुद्ध रह सके।

राष्ट्र में आन्तरिक विवाद –

आज हमारे देश में प्रान्त, भाषा और धर्म के नाम पर झगड़े सामान्य सी बात हो चली है। इनके चलते राष्ट्र कमजोर हो रहा है। धार्मिक विद्वेष, साम्प्रदायिक उन्माद आदि के कुपरिणाम भारत–विभाजन के रूप में हम पहले भी भुगत चुके हैं। जिस मार्ग की परिणति राष्ट्रविघटन हो, जो मनुष्य को मनुष्य से दूर करे, उस पर आखिर हम क्यों चलें इस समस्या का समाधन भी संस्कृत में है। अथर्ववेद का स्पष्ट निर्देष है कि राष्ट्र में हमारी भाषाएँ तथा पूजा–पद्धति अलग–अलग हो सकते हैं, किन्तु ये विवाद का कारण नहीं बनने चाहिए। हमें एक परिवार की तरह उपलब्ध साधनों व प्राकृतिक संपदा का उपभोग मिलकर करना चाहिए। जिस प्रकार गाय सबको समान रूप से सहस्त्र धराओं में दूध देती है, वैसी ही स्थिति राष्ट्र की है।[9]

अथर्ववेद में ही आगे कहा गया है हम समान मनवाले और एक–दूसरे के प्रति द्वेष न करने वाले बनें तथा वैसे ही एक–दूसरे से प्यार करें, जैसे गाय आपने सद्योजात बछड़े

---

[6] नोंमयं प्रतिपेदग्नौ। मनुस्मृति 5.53 न मूत्रं पथि कुर्वीत मनुस्मृति 4.45 न फल्कृष्टे न ले... 46 मनु. 4.46

[7] फलादानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्। गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधम्। मनुस्मृति 11.142, 1.43

[8] मा कामम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशतीर्विहिनीनशः। मनुस्मृति 6.48.17

[9] जनं बिभ्रती बहुध विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्, सहस्त्रधारा द्रविणस्य में दुहां ध्रुवे व धेनुरनस्फफरन्ती। अथर्व. 12–1.45

से प्यार करती है।[10] ऋग्वेद में एकता के सूत्र में बाँधकर मिलकर बोलने व मिलकर चलने की बात की है, जिससे हम समृद्धि का उपभोग मिलकर कर सकें।[11]

सामाजिक विषमता

वर्गभेद हमारी एक ज्वलन्त समस्या है। जातिवाद और धनसम्पत्ति के कारण हम उच्च–नीच हो गये हैं, यही भावना अस्पृश्यता की पृष्ठभूमि में रही है।

वेद का इस सम्बन्ध में बहुत ही सुस्पष्ट और सराहनीय निर्देश है। वेद के अनुसार, न कोई बड़ा है, न छोटा, न उच्च है, न नीच। हम सब एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं तथा भाई–भाई हैं। हमें उच्च, मध्यम और निम्न के विवाद से परे रहते हुए भ्रातृभाव के साथ समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होना है।[12] वर्ण–जाति आदि की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर हमें सबका मंगलकांक्षी बनना है।[13]

पारिवारिक सम्बन्ध शैथिल्य

स्वार्थपरायणता तथा स्वोदरभरणात्मकप्रवृत्ति ने पारिवारिक अटूट रिश्तों की पवित्रता तथा स्नेहबन्धन को शिथिल कर दिया है।

'मातृदेवो भव' तथा 'पितृदेवो भव' के उद्घोषवाले भारतीय समाज में माता–पिता को 'वृद्धगृहों' तक पहुँचाने की स्थिति आ गयी है। श्वसुर पक्ष में सम्राज्ञी बनने वाली वधू को निस्संकोच कहीं–कहीं भस्मसात् कर दिया जाता है।

---

[10] सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः, अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जामिव्रान्ध्या। अथर्व. 3.30.1

[11] संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते। ऋग्वेद 10.191.2

[12] ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास एते मध्यमासो सहसा विवावृधुः, सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिविमर्या आ नो अच्छा जिगातन। ऋग्वेद 5.59.6

[13] प्रयं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। अथर्व. 19.6.2.1 रुचं ने धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि, रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्। वा.सं. 18/84/तै.सं. 5.7.3.6/मै.सं. 3.4.8 तै.सं. 3

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

समग्र संस्कृत–साहित्य इस समस्या का सुन्दर समाधन प्रस्तुत करता है। वेद के अनुसार, पुत्र माता–पिता की आज्ञानुसार काम करे, भाई भाई से तथा बहन बहन से द्वेष न करें। पत्नी मधुरभाषिणी रहे।[14]

माता–पिता के सम्बन्ध में मनुस्मृति का कथन है कि माता–पिता का आदर, सेवा–शुश्रूषा तथा मान–सम्मान ही सब धर्मों का मूल है। माता–पिता का आदर सब धर्मों का आदर है तथा इनका निरादर सभी कर्मों को निष्फल कर देता है। अतः जब तक माता–पिता जीवित रहें, तब तक उनकी ही सेवा ही सेवा की जाये, और कोई धर्म करने की आवश्यकता नहीं। मनुस्मृति के अनुसार, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता पृथिवी की मूर्ति है तथा भाई अपना ही प्रतिरूप है।[15] पतिगृह में जाने वाली नववधू के लिए वेद में कामना की गई है कि वह वहाँ सास–ससुर, ननद और देवरों की सम्राज्ञी हो। अर्थात् उसे वहाँ इतना सम्मान मिले, जिससे लगे कि उस घर पर उसका ही साम्राज्य है।[16] हमारे जीवन में आनेवाली अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधन संस्कृत साहित्य जुटाता है। ये समाधन ऋग्वेद से लेकर समग्र लौकिक संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं।

क्या 'एकं सद् विप्रा बहुध वदन्ति'[17] उद्घोष मत–मतान्तरो व धर्मिक विद्वेष से उफपर उठने की बात नहीं करता? क्या 'तेन त्यक्तेन भुश्रीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।[18] आदि कथन बड़े–बड़े रिश्वत काण्डों में उलझने से नहीं रोकते? क्या 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते

[14] अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवम्।। अथर्व. 3.30.2
[15] आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः।। मनुस्मृति 2.145, 225–237 सर्वं तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः। अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। मनृस्मृति 2.226 यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्, तेष्वेव नित्य शुश्रूषां कुर्यात्त्रियहिते रतः।। मनृस्मृति 2.234–235
[16] सम्राज्ञी श्वसेरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव, ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।। ऋग्वेद 10.85.42
[17] वही. 1.164.46
[18] ईशावास्योपनिषद्।

रमन्ते तत्र देवताः'[19] कथन महिलाओं पर अत्याचार का निषेध नहीं करता? 'बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश'[20] अथवा

निष्ट्वक्त्रासश्चिदिन्नरो भूरितोका वृकादिव।
बिभ्यस्यन्तो ववाशिरे शिशिरं जीवनायकम्।। [21]

या 'वरमेको गुणी पुत्रः' 'एकेन सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्' आदि उल्लेख क्या सीमित परिवार पर बल नहीं देते? क्या 'इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्, शंनोऽस्तु द्विपदेशं चतुष्पदे'[22] 'शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे',[23] तथा गौ को वेदों में 'अघ्न्या' कहना पशुधन के संरक्षण और पशुवध पर प्रतिबन्ध की बात नहीं करते?

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीतात्मनङ्गाणं गोरकृत्वा तु शक्तितः।। [24]

कथन क्या राष्ट्रीय आर्थिक समृद्धि के पोषक गोवंश की प्राणपण से रक्षा करने की प्रेरणा नहीं देता? भगवान् श्रीकृष्ण का गीता में स्वयं को 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'[25] तथा 'स्ततसामस्ज्ि जा"वी'[26] कहना क्या वायु और जल को शुद्ध रखने का निर्देश नहीं देता? आज की राजनैतिक अस्थिरता का समाधन भी संस्कृत ने जुटाया है, जिसमें सभा, वृद्ध धर्म और सत्य को परिभाषित किया है –

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति,

---

[19] मनुस्मृति 3.56
[20] वही . 1.164.32
[21] निरुक्त 1.3.10
[22] यजु. 36.8
[23] वही . 1085.43
[24] मनुस्मृति 11.115
[25] गीता 10.26
[26] गीता 10.31

सत्यं न तद्यच्छमभ्युपैति।।

अर्थात् वह सभी ही नहीं, जहाँ वृद्ध (विद्यावृद्ध, समझदार, गम्भीर) व्यक्ति न हों, वे वृद्ध ही नहीं, जो धर्म या न्याय की बात न करते हों; वह धर्म ही नहीं है, जिसमें सत्य ही न हो, वह सत्य ही नहीं है, जो छलयुक्त हो।

क्या आज की सभाएँ, वृद्ध, धर्म और सत्य प्रतिकूल दिशा की ओर नहीं जा रहे हैं? क्या यह एक नवीन समस्या नहीं बन गयी है?

हमारा समाज समस्यारहित हो जायेगा, यदि ऋग्वेद[27] के अनुसार उल्लू जैसे अज्ञानी, भेड़िये आदि हिंसक, कुत्ते जैसे ईर्ष्यालु, चकवे जैसे कामी, बाज जैसे मदयुक्त और गिद्ध जैसे लालची व्यक्तियों से मुक्त रहे। इस प्रकार बहुत सी सामायिक समस्याओं का हल संस्कृत में निहित है। आवश्यकता है उसके अन्वेषण की।

[27] उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्, सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं हवृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।। ऋग्वेद 7.10.4.22